व्दारपाल केमुख से भगवान् का आगमन सुनकर दोनो भाई दौडें हुए आये और उन्हें प्रणांम कर बहुत ही आनन्दित हुए । युवराज श्रेयांसकुमार ने ज्योंही भगवान् का दिव्य रू प देखा त्याही उसे जाति स्मरण हो आया । श्रीमती और वज्रजंघ भवका समस्त वृत्तान्त उनकी आंखोके सामने, ज्यों की त्यो दिखने लगा। पुण्डरीकिणीपुरी को जाते समय रास्तेंमें सरोवर के किनारे जो मुनि युगल के, लिये आहार दिया था वह भी श्रेयांस को ज्योका त्यों याद हो गया । यह प्रात:काल का समय आहार देनेकेयोग्य है ऐसा विचार कर उसने उन्हें नवधा भक्तिपूर्वक पड़गाहा और श्रध्दा, तुष्टि आदि गुणों से युक्त होकर आदि जिनेन्द्र वृषभनाथ को आहार देने के लिये भीतर लिवा ले गया । वहां उसने राजा सोमप्रभ और उनकी स्त्री लक्ष्मीपती के साथ भगवान् के पाणिपात्र में इक्षुरस की धाराएं प्रदान कीं । इस पवित्र दानसे प्रभावित होकर देवोंने आकाश से रत्नों की वर्षा की, दुन्दुभि बाजे बजाये, पुष्प वर्षाये और जय जय ध्वनिके साथ अहो दानम् कहते हुए दान की प्रशंसा की उस समय सब दिशाए निर्मल हो गई थी । आकाश में मेघ का एक टुकड़ा भी नजर नहीं आता था और मन्द, सुगन्ध पवन चलने लगा था । महामुनीन्द्र वृषभेश्वर के लिये दान देकर दोनों भाईयों ने अपने आप को कृतकृत्य समझा । बहुतोंने इस दान की अनुमोदना की ।

आहार ले चुकने केबाद वृषभदेव बन की ओर बिहार कर गये । उस युग में सब से पहले, दानकी प्रथा श्रेयांसकुमार ने ही चलाई थी इसलिए देवोंने आकर उस का खूब सत्कार किया । सम्राट भरत को इस बात का पता चला तब वे भी समस्त परिवार के साथ हस्तिनापुर आये और वहां सोमप्रभ श्रेयान्स तथा लक्ष्मीपती का सत्कार कर प्रसन्न हुए । इस के अनन्तर श्रेयान्सकुमार ने दान स्वरू प, दानकी आवश्यकता तथा उत्तम,मध्यम जघन्य पात्रोंका स्वरू प बतलाकर दानतीर्थ की प्रवृत्ति चलाई । प्रथम तीर्थकर वृषभदेव को आहार देकर श्रेयान्सकुमार ने जिस लोकोत्तर पुण्य का उपार्जन किया था उसका वर्णन कौन कर सकता है ? आचार्योने कहा है कि जो तीर्थकरों कोसबसे, पहले आहार देता है वह नियम से उसी भवसे मोक्ष प्राप्त करता है, सो श्रेयांस भी लोक में अत्यन्त प्रतिष्ठा प्रप्त कर जीवनकेअन्त समयमें मोक्ष प्राप्त करेंगे ।

भगवान् आदिनाथ बीहड़ अटवियों मे ध्यान लगाकर आत्मशुध्दि करते थे । वे बहुत दिनों का अन्तराल देकर नगरों में आहार लेनेके लिये आते थे सो भी रू खा सूखा स्वल्प आहार करते थे । वे अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विवक्त, शय्यासन, कायक्लेश प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, व्यत्सर्ग और ध्यान इन बारह तपोंको भलीभांति तपते थे । उन्होंने जगह जगह घूमकर अपनी चेष्टाओंसे मुनि मार्गका प्रचार किया था । यद्यपि वे उस समय मुह सें कुछ बोलते न थे तथापि इनकी क्रियाए इतनी प्रभावक होती थी कि लोग उन्हें देखकर बहुत जल्दी प्रतिबुध्द हो जाते थे । वे कभी ग्रीष्म ऋतुमें पहाड़ की चोटियों पर ध्यान लगाते थे, कभी शीत कालकी विशाल रातोंमें नदियों के तटपर आसन जमाते थे और कभी वर्षा ऋतुमे वृक्षों के नीचे योगासन लगाकर बैठते ते । इस तरह उग्र तपश्चर्या करते करते जब उन्हें एक हजार वर्ष बीत गये तब वे एक दिन पुरीमताल नामक नगरके पास

पहुचे और वहां शकट नामक बनमें निर्मल शिला तल पर पद्मासन लगा कर बैठे । उस समय उनकी आत्म-विशुध्दि उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी जिसके फलस्वरू प उन्होंने क्षपक श्रेणीमें प्रवेश कर शुक्ल ध्यान के व्दारा ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार घातिया कर्मो का नाशकर फाल्गुन कृष्ण एकादशीके दिन उत्तराषाढ़ नक्षत्र में सकल पदार्थो को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञान का लाभ किया । भगवान् आदिनाथ केवलज्ञान के व्दारा तीनों लोकों को और तीनों कालों के समस्त पदार्थो को एक साथ जानने देखने लगे थे । ज्ञानावरण के नाश होनेसे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था दर्शनावरणके अभाव में केवलदर्शन मोहनीय के अभाव में अनन्त सुख और अन्तराय के अभाव में अनन्त वीर्य प्राप्त हुआ था ।

वृषभ जिनेन्द्र को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है इस बात का इन्द्र तो पता चला तब वह समस्त परिवार के साथ भगवान के साथ भगवान की पूजा के लिये पुरीमतालपुर आया । इन्द्र के आनेके- पहिले ही धनपति कुवेरने वहां दिव्य सभा-समवसरण की रचना कर दी थी । वह सभा बारह योजन विस्तृत नील मणिकी गोल शिला-तल पर बनी हुई थी । जमीन से पांच हजार धनुष ऊंची थीं । ऊंपर पहुंचने के लिये उसमें बीस हजार सीढियां बनी हुई थी, उस सभा के चारों ओर अनेक मणिमय सुवर्णमय कोट बने हुए थे । उसमें चारों दिशाओं में चार मानस्तम्भ बनाये गये थे, जिन्हें देखनेसे मानियों का मान खण्डित हो जाता था । अनेक नाट्यशालायें बनी हुई थीं जिनमें स्वर्ग की अप्सरायें भगवद् भक्ति से प्रेरित होकर नृत्य कर रहे थे । अनेक परिखाएं थीं जिन में सहस्त्रदल-हजार पांखुड़ी वाले- कमल-फूल रहेथे । वहांके रत्नमय दरबाजोंपर देव लोग पहरा दे रहे थे । ऊपर चलकर भगवान् की गन्धकुटी बनाई गई था,जिसमे रत्नमय सिंहासन रक्खा हुआ था । सिंहासन के चारों ओर श्रीमण्डप बनाया गया था, उसके सब और परिक्रमा रू पसे बारह सभाएं बनाई गई थीं जिनमें देव, देवियां, मनुष्य, तिर्यंच, पशु, पक्षी आदि सभी सुखसे बैठ सकते - थे । कुवेरके व्दारा बनाई हुई दिव्य सभा को देखकर इन्द्र बहुत ही हर्षित हुआ, और भक्ति से जय, जय जय शब्द करता हुआ समस्त परिवार के साथ वहां पहुंचा जहा पूर्ण ज्ञानी योगी भगवान् आदिनाछ विराजमान थे । ऊपर जिस गन्धकुटीका कथन कर आये हैं भगवान् उसी में स्वर्ण सिंहासनपर चार अंगुल अन्तरीक्ष में विराजमान थे । वहां उनके दिव्य तेजसे सब ओर प्रकाश सा फैल रहा था । इन्द्रसे विनय नमस्कार कर सुमधुर शब्दोंमें हजार नामोंसे उनकी स्तुति की ।

महाराज भरत राजसभामें बैठे हुए ही थे कि इतने में पुरोहित ने पहुंचकर उनसे जगद्गुरू वृषभदेव को केवलज्ञान होने का समाचार सुनाया । उसी समय कञ्चुकी - अन्त:पुरके पहरेदारने, आकर पुत्रोत्पत्ति का समाचार सुनाया और उसी समय तेजके शस्त्रपालने आकर कहा कि नाथ ! शस्त्रशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ है । जो अपने तेजसे सूर्यके तेज को पराजित कर रहा है । राजा भरत तीनोंके मुखसे एक साथ शुभ समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। इन तीन उत्सवो में, से पहले किसमें शामिल होना चाहिये, यह विचार कर क्षण एक के लिये भरत महाराज व्याकुल - चित्त हुए थे अवश्य, पर उन्होंने बहुत

जल्दी धर्मकार्य ही करना चाहिये , ऐसा दृढ़ निश्चय कर लिया और निश्चय के अनुसार समस्त भाई , बन्धु, मन्त्री पुरोहित , मरुदेवी आदि परिवार के साथ गुरदेव पितृदेव के कैवल्य महात्सवमें शामिल होने के लिये पुरिमतालपुर , पुहंचे । वहां समवसरण की अद्‌भूत शोभा देखकर भरत का चित्त बुहत ही प्रसन्न हुआ । देव द्वारपालोंने , उन्हें सभा के भीतर पहुंचा दिया ।वहां उन्होंने प्रथम पीठिकापर विगजमान धर्म-चक्रोंकी प्रदक्षिणा दी , फिर द्वितीय पीठिका पर शोभायमान ध्वजाओं की पूजा की, इसके अनन्तर गन्ध-कुटी में सुर्वण सिंहासन पर चार अंगुल अधर विराजमान महायोगीश्वर भगवान् वृषभदेव को देखकर,उन का ह्रदय भक्तिसे गद्‌गद् हो गया । भरत बगैरहने ती न प्रदक्षिणाएं- दीं फिर जमीन पर मस्तक झुकाकर जिनेन्द्र देव को नमस्कार किया और श्रुततिसुखद शब्दों में अनेक स्तोत्रो से स्तुतिकार जल चन्दन आदि अष्ट द्रव्योसे उनकी पूजा की । भक्ति प्रदर्शित करनेके बाद भरत वगै्रह मनुष्यों के कोठे मे बैठ गये । उस समॉ जिनेन्द्र दिवकी बैठक के पास अनेक किसलयों से, शोभायमान अशोक वृक्ष था जो अपनी श्यामल रक्त प्रभा से प्राणिमात्र के शोक समूह का नष्ट कर रहा था । वे ऊंचे सिंहासनपर विराजमान थें, उन के पीछे भामण्डल लगा हुआ था जो अपनी कान्तिसे भास्कर (सूर्य) को भी पराजित कर रहा था, यक्षकुमार जाति के दव चौंसठ चमर ढोल रहे थे , जो भगवानके फैलते हुए धवल यशकी तरह मालूम होते थे । देव लोग स्वर ताल के साथ दुन्दुभि आदि हजारो तरह के बाजे बजा रहे थे और आकाशसे मन्दार सुन्दर नमेरु, पारिजात सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के सुगन्धित फूल वर्षा रहे थे । उस समय उनका एक ही मुख चारो ओरसे दिखाई देता था ।

उनके पुण्य प्रताप से चारों ओर एक योजन तक सुभिक्ष हो गया था कोई धन-धान्य के अभाव में, दुखी नहीं था । उनके शरीरकी छाया नहीं पड़ती थी , कोई कसी किो नहीं सताता था , सभीके ह्रदय - क्षेत्रों में दया-सरिता कल-कल वाद करती हुई बह रही थी । त्रिभुवनपति वृषभदेव के इस दिव्य प्रभाव को देखकर सभी चकीत हो गये थे । उनके मुखचंद्रको देखकर प्राणिमात्र के -ह्रदयों में आनन्द का समुद्र लहरा राह था । उस सभा में देव लोग इतना सुन्दर- प्रबन्ध कर रहे थे कि जिससे किसी को कुछ भी कष्ट मालूम नहीं होने पाता था । जन्म- के अन्धे, लंगडे बहरे आदि मनुष्य उस सभामें पहुंचकर नीरोग हो जाते थे । धीरे धीरे सभा के बारहों कोठे देव, देवियां, मनुष्य स्त्रियां तथा पशु, पक्षी वगैरह से खचाखच भर गये थे । जब सभा में पूर्ण शान्ति नजर आने लगी,तब भगवान् के मुखारविन्द से दिव्य वाणी प्रकट हुई । उनकी वह वाणी ओंकार रुप थी । उसमें मुंहसे प्रकट होते समय अक्षरों का विभाग नहीं मालूम- होता था , इसलिये लोग उसे निरक्षरी भाषाकहते है। उस भाषा में सब भाषाओं का रुप - परिणनम करने की शक्ति थी , इसलिये जो प्राणी जिस भाषाको -समझता था उसके कानोंमें - भगवान् की वाणी उसी भाषा रुप परिनित हो जाती थी । उनकी कवह वाणा इतनी मधुर और- स्पष्ट होती थी कि उसे सुनकर सभी को मालूम होता था कि हमारे - कानों में अमृत के झरने- झर है ।

उन्होने अतिशयपूर्ण दिव्य ध्वनिमें धर्म-अधर्म का स्वरुप समझाकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चरित्र का, जीव अजीव, आस्त्रव,बन्ध, संवर , निर्जरा ओर मोक्ष इन सात तत्वों का , जीव-पुद्गल, धर्म अधर्म आकाश और काल इन छहों द्रव्योंकी , पुण्य-पाप का और लोक-अलोक का स्वरुप बतलाया था । यह भी बतलाया था कि जब तक प्राणियों की दृष्टि बाह्य भौतिक पदार्थों में उलझी रहेगी तबतक उसे आत्मीय आनन्द का अनुभव नहीं हो सकता । उसे प्राप्त करने के लिये तो सब ओरसे मोह छोड़कर कठिन तपस्याएं करने की आवश्यकता हैं -इंद्रियों पर विजय प्राप्त करने की आवश्यकता है और है आवश्यकता आत्मध्यान में अचल होने की । भगवान् की भव्य भारती सुनकर हर एक का चित्त द्रवीभूत हो गया था । राजा भरतने दृढ़- सम्यग्दर्सन धारण किया । कुरुकुल चूड़ामाणि राजा, सामप्रभ दानतीर्थ के प्रर्वतक युवराज श्रेयान्स और भरत का छोटा भाई वृषभसेन इन तीन पुरुषोंने प्रभावित होकर उसी सभा मे जिन दीक्षा ले , ली और मति, श्रुति अवधि, और मन:पर्याय ज्ञानकेधारक गणधर मुख्य श्रोता बन गये । ब्राह्मी और सुन्दरी नामक पुत्रियों भी पूज्य पिताकेचरण कमलोंके उपाश्रयमें आर्यिका केब्रत लेकर समस्त आर्यिकाओं की गणिनी-स्वामिनी हो गई थी । कच्छा महाकच्छा आदि चार हजार राजा जो कि पहले मुनि मार्गसे भ्रष्ट हो गये थे , भरत पुत्र मरीचिको छोड़कर वे सब फिरसे भावलिङ्ग.पूर्वक सच्च दिगम्बर मुनि हो गये थे । आदिनाथ का पुत्र अनन्तवीर्य बी दीक्षित हो गया । श्रुतकिर्ती ने , श्रावक केब्रत लिये और प्रिचव्रत ने श्राविका केव्रत ग्रहण किये । निक सिवाय असंख्य नर-नारियों ने व्रत-विधान धार किये थे यहां सिर्फदो-चार मुख्य व्यक्तियों का नामोल्लेख किया है । बहुतसे देव देवियों ने अपने आपको सम्यग्दर्शन अलंकृत किया था । इस प्रकार भगवान् का केवलज्ञान-महोत्सव देखकर भरत सम्राट राजधानी अयोध्दा को वापिस लौट आये । लोगोंका आना जाना जारी रहता था इसलिये समवसरण की भूमि देव, मनुष्य और तिर्यंचों से कभी खाली नहीं होने पाती थी ।

इन्द्रने जिनेन्द्र देवसे प्रार्थना की हे देव ! संसार केप्राणी अधर्म रुप सन्ताप से सन्तप्त हो रहे है । उन्हें हेय उपोदय का ज्ञान नहीं है इसलिये देश -विदेशों में विहार कर उन्हें हित का उपदेश देवे के लिये यही समय उचित है । किसी एक जगह जनता का इपस्थित होना अशक्य है अतएव यह कार्या जगह-जगह विहार करने से ही सम्पन्न हो - सकेगा । इन्द्रकी प्रार्थना सुनकर उन्होंने अनेक देशों में विहार किया । वे आकाश में चलते थे । चलते समय देव लोग उनकेपैरों के, नीचे सुर्वण कमलो की रचना करते जाते थे । मन्द सुगन्धित हवा बहती थी, गन्धोदक की वृष्टी होती थी , देव जय जय शब्दो करते थे उस समय पृथ्वी कांच केसमान निर्मल हा गई थी , समस्त ऋतुएं एक साथ शोभाए प्रकट कर रहीं थी, पृथ्वी में कहीं कण्टक नहीं दिखाई देते थे , सब ओर सुभिक्ष हो गया था , कही आर्तध्वनि सुनाई नही पड़ती थी और उनकेआगे, धर्म -चक्र तथा अष्ट-मंगल द्रव्य चला करता था । कहने का मतलब यह है कि उनकेपुण्य परमाणु इतने सुभग और विशाल थे कि वे जहां भी जाते थे , वहीं देव , दानव मानव आदि सभी प्राणी उनकेवशीभूत हो जाते थे । विहार करते करते वहाँ वे रुक जाते थे ,

धनपति कुबेर वहीं पर पूर्व की तरह समवसरण दिव्य सभा की रचना कर देता था जहां बैठकर भव्य जीव सुखपूर्वक आत्म-हित का उपदेश श्रवण करते थे । उनके उपदेश की शैली इतनी मोहक थी कि वे जहां भी उपदेश देते थे वहीं असंख्य नर-नारी प्रतिबुध्द होकर मुनि , आर्यिका , श्रावक , श्राविका बन जाते थे । उस समय सकल भारत वर्षा में अखण्ड रुपसे जैन धर्म फैला हुआ था । इस प्रकार देश विदेशों में घूमकर वे कैलाश गिरिपर पहुंचे और वहां आत्म-धान्य मे लीन हो गये । अब कुछ सम्राट भरत के विषय मे सुनिये - समवसरण से लौटकर महाजा भरत ने - पहिले चक्ररत्न कि पूजा कि और फिर याचकों को- इच्छानुसार दान देते हुये पुत्रोत्पत्ति का उत्सव किया । अभिनव राजा भरत के पुत्र उत्पन्न हुआ हैं यह समाचार किसे हर्षित बना देता था ? उस उत्सव में अयोध्यापुरी इतनी सजाई गई थी कि उसके सामने- पुरन्दपुरी अमरावती भी लज्जा से सहम जाती थी । प्रत्येक मकानों की शिखरोंपर तरह तरह की पताकाएं फहराई गई थी, राजमार्ग सुगन्धित जलसे सींचे गये थे , बड़े बड़े बाजों आवाजसे आकाश गुंज गया था , सभी ओर मनोहर संगीत और नृत्य-ध्वनी सुनाई पड़ रही थी, जगह जगह तोरणद्वारा बनाये् गये थे , और हर एक घरोंके द्वार पर मणिमय वन्दनमालएं लटकाई गयी थी । उस समय अन्त:पुर की शोभा तो सबसे निराली ही नजर आती थी ।

इधर समस्त नगरमें पुत्रोत्पत्ति का उत्सव मानाया जा रहा था , उधर महाराज भरत दिग्विजय की यात्रा के लिए तैयारी कर रहे थे । वह समय शरद् ऋतु का था । आकाश मं कहीं कहीं सफेद बादलों का समूह फैल रहा था , जो कि भरत-राजाके निर्मल यश के समान मालूम होते थे, गगनमें जो सूर्य चमकता था वह सम्राटके तीव्र प्रताप की तरह जान पड़ता था , रात्रिं मे निर्मल चन्द्रमा शोभा देता था, जो कि भरतके साधु स्वभाव की तरह दिखाई देता था , नद-नदी,तालाब आदि किा पानी स्वच्छ हो गया था , सूर्य की तेजस्वी किरणों से मार्ग का कीचड़ सुख गया था, तालाबों में दिनमें कमल और रात में कुमुद फूलते थे । उनपर भ्रमर जो मनोहर गुञ्जार करते थे सो ऐसा मालूम होता था , मानों वे भरत -राजा का यशही गा रहे हैं । हंस अपने सफेद पर फैलाकर निर्मल नीले नभमें उड़ते हुए नजर आते ते , उस समय प्रगृतिरानी की शोभा सब से निराली थी । भरत ने उस समय को हि दिग्विजय के लिये । योग्य समझकर शुभमुहूर्त में प्रस्थान किया । प्रस्थान करते समय गुरुजनों ने भरत का अभिषेक किया । सुन्दर वस्त्राभूषण पहिनाये, माथे पर कुंकुम का तिलक लगाया और आरती उतारी थी । समस्त वृध्द जनों ने आशीर्वाद दिया , बालकों ने अदम्य उत्साह प्रकट किया और महिलाओने पुष्प तथा धान के खीले बरसाये थे । उस समय भरत-राज की असंख्य सेना उमड़ते हुए समुद्र की तरह मालूम होती थी । वृषभनन्दन भरत कुमार आद्य चक्रवर्ती थे, इसलिये उनके चौदह रत्न और नौ निधियां प्रकट हुई थी । रत्नोके नाम ये है । १ सुदर्शन चक्र, २ सूर्यप्रभ छत्र, ३ सौनन्दक खड्ग, ४ चण्डवेग दण्ड, ५ चर्मरत्न, ६ चूड़ामणि मणि, ७ चिन्ताजननी काकिणी, ८ कामवृष्टि गृहपति, ९ अयोध्य सेनापति, १० भद्रमुख तक्षक, ११ बुध्दि सागर पुरोहीत , १२ विजयर्धा याग हस्ती, १३ पवनंजय अश्व और, १४ मनोहर सुभद्र स्त्री ।

इनमेंसे प्रत्येक रत्नकी एक एक हजार देव रक्षा करते थे । ये सब रत्न दिग्विजय केसमय चक्रवर्तीकेसाथ चल रहे थे । इनकेरहते- हुए उन्हें- कोई भी काम कठिन मालूम नहीं होता था । नव निधियां ये हैं -१ काल २ महाकाल ३ पाण्डूक ४ मानवाख्य ५ वैरुपाख्य ६ सर्व रत्नाख्य ७ शङ्ख. ८ पद्म ९ पिंगलाख्य । इन निधियों की भी हजार देव रक्षा करते थे । निधियों केरहते हुए भरत सम्राट्को कभी धन धान्य की चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी ।

इच्छानुसार समस्त वस्तुयें निधियोंसे ही प्राप्त हो जाती थी । भरत चक्रवर्ती अपने तक्षक-रत्न (उत्तम बढ़्ई) केद्वारा बनाये गये रथपर बैठे हुए थे । उनकेमस्तक पर रत्नखिचत सोने का मुकुट चमक रहा था । शिरपर सफेद छत्र लगा हुआ था और दोनों ओर चमर ढोले जा रहे-थे । बन्दी गण गुणागन कर रहे थे । अनेक हाथी, घोडे, रथ और प्यादों से भरी हुई सम्राट की सेना बहुत भली मालूम होती थी ।

उस समय लोगो केपदाघात से उड़ी हुइ धूलिने प्रकाश को ढक लिया ता , जिस से ऐसा मालूम होता था मानो सूर्य भरत केप्रताप से पराजित होकर कहींपर जा छिपा है । सैनिको केहाथों में, अनेक तरह केआयुध (हाथियार) चमक रहे थे भरत सम्राट का सैनिक बल देखने केलिये आये हुए देव और विद्याधरों केविमानों से समस्त आकाश भर गया था । वह सेना अयोध्यापुरी से निकल कर प्रकृति की शोभा निहारती हुई मैदानमें द्रुत गतिसे जाने लगी थी । बीच बीच में अनेक अनुयायी राजा अपनी सेना सहित भरत केसाथ मिलते जाते थे । इसलिये वह सेना नदी की भांति उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी । बहुत कुछ मार्ग करने पर भरतेश गड.ा नदी केपास पहुंचे । गंगा की अनूठी शोभा देखकर भरत की तबियत बाग बाग हो गई । गड़ा शीतल जलकणों से मिली हुई और सरोज गन्ध से सुवासित मन्द समीर से उनका स्वागत किया । भरत ने वह दिन गड़ा तीरपर ही बिताया । भरत तथा सेनाके ठहरने केलिये स्थपति ने अनेक तम्बु, कपड़े केपाल तैयार कर दिये थे जिनसे ऐसा मालूम हेता था कि भरत केविरह से दु:खी होकर अयोध्यापुरी ही वहां पहुंच गई है । दूसरे दिन विजयार्ध गिरिकेसमान अत्यन्त ऊंचे विजार्ध नामक हाथीपर बैठकर सम्राट ने समस्त सेना केसाथ गड़ाकेकिनारे प्रस्थान किया । चण्डवेग नामक दण्डकेप्रताप से समस्त रास्ता पक्की सड़क केसमान साफ होता जाता था, इसलिये सैनिकों को चलनंमें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने पाता था । बीचमें अनेक नरपाल मुक्ताफल, कस्तूरी, सुर्वण ,चांदी आदिका उपहार लेकर भरतेश से भेंट करनेकेलिये आते थे । इस तरह कुठ दूरतक चलने केबाद वे गंगा-द्वारा पर पहुंचे । वहांपर उपसागर की अनुपम शोभा देखकर वे बहबत ही प्रसन्न हुए । फिर क्रम-पूर्वक स्थल-मार्ग से - वेदी-द्वारमें प्रविष्ट हुए । वहां गंगा नदीकेकिनारे केबनों मे अपनी विशाल सेना ठहरा कर लवण समुद्र केऊपर अधिकार करने की इच्छा से भरत महाराज तीन दिन तक वहीं रहे । वहां उन्होंने-लगातार तीन दिन का अनशन कियातथा कुशासन पर बैठकर जैन शास्त्रोंकेमन्त्रों की आराधना की ।

यह सब करते हुए भी भरत परमेष्ठि पूजा सामायिक आदि नित्यकर्म नहीं भूलते थे । वहां भी उन्होंने पुरोहित के साथ मिलकर पंच परमेष्ठी की पूजा की थी और एकाग्रचित्त होकर ध्यान सामायिक वगैरह किया था । फिर समस्त सेनाकी रक्षा के लिये सेनापति को छोड़कर अजितंजय नामक रथपर सवार हो गंगा-द्वारसे प्रवेश कर लवण - समुद्र में प्रस्थान किया । वे जिस रथपर बैठे हुए थे वह अनेक दिव्य अस्त्रोंसे भरा हुआ था । उसमें जो घोड़े जोते थे वे जलमें ,भी स्थल की तरह चलते थे और अपने वेग सम मन के वेग को जीतते थे । उनका वह रथ पानी में , ठीक नाव की तरह चल रहा था । रथके प्रबल वेग से समुद्र में जो रथकेप्रबल वेग से समुद्र में जो ऊंची लहरे उठती थीं उनसे ऐसा मालूम होता था मानों वह भरत केअभिगमनसे प्रसन्नचित्त होकर बढ़ रहा हो । चलते चलते जब वे बारह योजन आगे निकल गये तब उन्होने वज्रमय धनुषपर अपने नाम से अंकित बाण आरोपित किया और क्रोधसे हुंकार करते हुए ज्योंही उसे छोड़ा त्योंही वह मगध देव की सभा में जा पड़ा । बाण के पड़ते ही मगध देव के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा । वह अपनी अल्प समधसे चक्रवर्ती के साथ लड़ने के लिये तैयार हो गया । परन्तु उनकेबुध्दीमान मन्त्रियों बाण में चक्रवर्ती भरत का नाम देखकर उस शान्त कर दिया और कहा कि यह चक्रवर्ती का बाण है इसकी दिव्य गन्ध, अक्षत आदिसे पूजा करनी चाहिये । इस समय प्रथम चक्रवर्ती भरत दिग्विजय केलिये निकले हुये है , वे बड़े प्रतापी हैं । भरत क्षेत्र के छह खण्ड की वसुधा पर उन का एकछत्र राज्य होगा । सब देव , विद्याधर आदि उनकेवशमं रहेंगे इसलिये प्रबल शत्रु के साथ विग्रह कना उचित नहीं है । मन्त्रियों केवचन सुन कर मगध का कोप शान्त हो गया । अब वह अनेक मणि मुक्ताफल आदि लेकर मन्त्री वगैरह आत्मजनों- के साथ सम्राट भरत के पास पहुचा और वहां उनेक सामने समस्त उपहार भेंट कर विनम्र शब्दों मे कहने लगा देव ! आज हमारे पूर्वकृत शुभ कर्मो का उदय आया है जिससे आप जैसे- महापुरू षों का समागम प्राप्त हुआ है । आपके शुभागमन से मुझे जो हर्ष हो रहा है वह वचनों से नहीं कहा जा सकता । साक्षात् परमेश्वर वृषभदेव जिन के पिता है, और चौदह रत्न तथा नौ निधियां अप्रमत्त होकर जिन की सदा सेवा किया करती हैं ऐसे आपके सामने अद्यापि यह मणि मुक्ताओं की तुच्छा भेंट शोभा नहीं देती तथापि प्रार्थना है कि,महानुभाव सेवक की इस अल्प भेंटको भी स्वीकृत करेंगे । यह कहकर उसने भरत के कानों मे मणिमयी कुण्डल और गेले में मणिमय हार पहिना दिया । भरत महाराज मगधदेव के नम्र व्यवहार से बहुत प्रसन्न हुये । उन्होंने सुमधुर शब्दों में उसके प्रति अपना कर्तव्य प्रकट कर मित्रता प्रकट की । मगध भी कर्तव्य पूरा कर अपने स्थान को वापिस चला गया ।

चक्रवर्ती भी विजय प्राप्त कर शिविर (सेना स्थानपर) वापिस आ गये । विजय का समाचार सुनकर चक्रवर्ती की समस्त सेना आनन्दसे फूल उठी । उसने हर्षध्वनि से सारे आकाश को गुञ्जा दिया । फिर दक्षिण दिशाके राजाओ को वश में करने के लिए चक्रवर्ती ने विशाल सेना के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया ।उस समय भरत महाराज उपसागर और लवणसागर के बीच में जो स्थल-मार्ग था , उसीपर गमन कर रहे थे । वहां उनकी वह विशाल सेना लहराते - हुए तीसरे सागर की नांई जान पड़ती

थी । इस तरह अनेक देशों को उल्लघंन करते और उनके राजाओं को अपने आधीन बनाते हुये भरतजी इष्ट स्थानपर पहुंचे । वहांपर उन्होंने इलायची की बेलोंसे मनोहर बन मे सेना ठहराकर पूर्वकी तरकह वैजयन्त महाद्वार से दक्षिण लवणोदधि में प्रवेश किया और बाहर योजन दूर जाकर उसके अधिपति व्यन्तर देवको पराजित कर वे वहांसे वापिस लौट आये । फिर उसी समुद्र और उपसमुद्र के बीच के रास्तेसे प्रस्थान कर पश्चिम की ओर रवाना हुये । क्रम-क्रम से सिन्धु नदी के द्वारपर वहां उन्होंने द्वार के बाहर की चन्दन, नारियल, एस, लवंग आदि के वृक्षोंसे शोभायमान वनोंमें सेना ठहराकर पहले की तरह लवण समुद्र में प्रवेश किया और के बाहर योजन दूर जाकर व्यन्तरों के अधीश्वर प्रभास नामक देवको पराजित किया । विजय प्राप्त कर लौटे हुए सम्राट का सेना ने शानदार स्वागत किया । इस प्रकार पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशा में विजय प्राप्त कर चुकने के बाद भरतजी उत्तर दिशा की ओर चले । अब तक उनकी सेना बहुत अधिक बढ़ गई थी क्योंकि रास्तें में मिलनेवाले- की अनेक राजा मित्र होकर अपनी अपनी सेना लेक उन्हीं के साथ मिलते जाते थे । जब वह विशाल सेना चलती थी तब उसके भार से पृथ्वी,पर्वत और पादप आदि सभी वस्तुयें कांप उठती थी । उसकी जयध्वनि सुनते ही शत्रु राजाओंके दिल दहल जाते थे । चलते चलत चक्रवर्ती बिजयार्ध पर्वत पास पहुंचे , वहां उन्होंने सुखसे समस्त सेना को ठहराया और स्वयं आवश्यक कार्य कर चुकने के बाद मन्त्रों की आराधना में लग गये । कुछ समय बाद वहांपर एक देव भरत से मिलने के लिए आया । भरतने उस सत्कार पूर्वक आसन दिया । भरत प्रदत्ता आसनपर बैठकर देवने निम्न शब्दों में अपना परिचय दिया प्रभो मैं बिजयार्ध नाम का देव हुं, मैं जाति का व्यन्तर हूं आप को आया हूआ देखकर सेवां में उपस्थीत हुआ, आज्ञा कीजिए में हर एक तरह से आपका सेवक हूँ । देव ! देखिये, आप का निर्मल-धवल यश समस्त आकाश मे कैसा छा रहा है- इत्यादी मनोहर स्तुति कर उसने चक्रवर्ती का तीर्थोदक से अभिषेक किया और अनेक वस्त्राभूषण, रत्नसिंगार, सफेद छत्र, दो चमर तथा सिंहासन प्रदान किया । इसके बाद देव आत्रा प्रकट कर अपनी जगहपर वापिस चला गया । यह बिजयार्ध देव बिजयार्ध गिरिकी दक्षिण श्रेणीमें- रहता हैर इसलिये इस के वशीभूत हो चुकनेपर भी उत्तर श्रेणी के देव को वश में करना बाकी है, और जब समस्त बिजयार्ध पर हमार अधिकार हो चुकेगा तभी दक्षिण भारत की दिग्विजॉ पूर्ण हुई कहलावेगी, ऐसा रगेचकर भरत महाराज ने जल,सुगन्धि आदि से चक्ररत्न की पूजा की तथा उपवास रखकर मन्त्रों की आराधना की । फिर समस्त सेना के साथ प्रस्थान कर विजयार्ध गिरि की पश्चिम गुफा के पास आये । चक्रवर्ती ने पास के बनों में सना ठहरा दी । वहां पर भी अनेक राजा तरह तरह के उपहार लेकर उनसे मिलने केलिए आये । उत्तर विजयार्ध का स्वामी कडतमाल नामक देव भी भरत के स्वागत के लिये आया । भरत ने उसके-प्रति प्रेम प्रदर्शन किया । कृतमाल ने चौदह आभूषण देकर भरत की खूब प्रशंसा की और गुफामें प्रवेश करने के उपाय बतलाये । चक्रवर्ती ने प्रसन्न हो कर कृतमाल को वापिस किया और स्वयं दण्ड रत्न से गुफां के द्वार का उद्घाटन किया । द्वारा का उद्घाटन करते ही जब उसमें- से चिरसंचित ऊष्मा गर्मी निकलने

लगी तब उन्होंन सेनापति से कहां कि जब तकर यहां की ऊष्मा शांत होती है तब तक तुम्ह पश्चिम खण्डपर विजय प्राप्त करो । चक्रवर्ती की आज्ञानुसार सेनापति अश्व रत्नपर सवार हो कुछ सेनाके साथ पश्चिम की ओर आगे बढ़ा । उस समय उसकेआगे - दण्ड रत्न भी चल रहा था । याद रहे कि भरत का सेनापित हास्तिनापूर के राज सोमप्रभा का पुत्रे जयकुमार था । वह बड़ा वीर बहादूर और निर्मल बुध्दि वाला था । जयकुमार ने दण्ड रत्नसे गुहा द्वार का उद्घाटन किया । पहले द्वार के समाने उसमें से भी ऊष्मादाह निकल ने लगी पर उसने उसकी परवाह नहीं की । वह अश्वरत्नपर सवार हो शीघ्रतासे आगे निकल गई । देवों की सहायतासे उसकी समस्त सेना भी कुशलता पूर्वक आगे निकल गई । इस प्रकार सेनापति समस्त सेनाके साथ विजयार्ध गिरिकी तटवेदिका को पारकर सिन्धु नदी की पश्चिम वेदिका के तोरणद्वारसे म्लेंच्छ खण्डोंमे जा पहुंचा । वहा उसने घुम-घुमकर समस्त म्लेच्छ खण्डों में चक्रवर्ती का शासन प्रतिष्ठापित किया । फिर म्लेच्छ राजा और उनकी सेना के साथ वापिस आकर पहली गुहा के द्वार का निरीक्षण किया । सेनापति को म्लेच्छ खण्डों के जीतने- में जितना (छह माह का) समय लगा था उतने समय तक गुहा द्वार की ऊष्मा शान्त हो चुकी थी । गुहा में प्रवेश करने के उपाय सोचकर विजयी जयकुमार चक्रवर्ती आ मिला । चक्रवर्ती भरत ने उसाक बहुत सन्मान किया । जयकुमारने साथ में आये हुए म्लेच्छा राजओं का चक्रवर्ती .... से परिचय कराया ।

इसके अनन्तर सम्राट भरत समस्त सेनाके साथ उस गुहाद्वार मे प्रविष्ट हुए ! सेनापति और पुरोहित गुफां की दोनों दीवालो पर काकिणी रत्न घिसते जाते थे जिससे उस तमिस्त्र गुफा में सूर्य चन्द्रमा के प्रकाश की तरह प्रकाश फैलता जाता था । गुहा का आधा मार्ग तय करनेपर उन्हों निमन्ना और उन्मन्ना नामकी नदियां मिली । निमन्ना नदी हर एक पदार्थ को डुबा देती थी और उन्मन्ना नदी डूबे हुए पदार्थ को ऊपर ला देती थी । स्थपति रत्नने दोनों नदियों के पुल तैयार कर दिये थे । चक्रवर्ती समस्त सेना के साथ उन्हें पार कर आगे बढ़े । इस तरह कुछ दिनों तक निरन्तर चलने पर गुहा मार्ग समाप्त हो गया और चक्रवर्ती तट के बन में पहुंच गये । वहां सिन्धु नदी के शीतल जल कणोंस मिश्रित पवन के सुखद स्पर्शसे सबको बहुत आनन्द हुआ । तटबन की मनोहरता से प्रमुदित होकर चक्रवर्तीने कुछ दिनों तक वहीं पर विश्राम किया । भरत की आज्ञा पाकर सेनापति जयकुमार ने पश्चिम की तरह पूर्व खण्डोंमें भी घुम घूमकर उनाक शासन स्थापित किया । जब जयकुमार लौट कर वापिस आया तब चक्रवर्ती उनका खूब आदर सत्कार किया । अब चक्रवर्ती समस्त सेना लेकर मध्यम खण्डको जीतने के लिये चले । वहां इनकी सेना का तुमुल रव सुनकर दो म्लेच्छ युध्द करनेके लिये भरत के सामने आये । उन म्लेच्छ राजाओं को उनके बुध्दिमान मन्त्रियों ने पहले तो युध्द करने से बहुत रोका पर अन्त में जब उनका विशेष आग्रह देखा तब उन्हें युध्द करनेके अनेक उपाय बताये । मन्त्रियों के कहे अनुसार म्लेच्छा राजाओंने मन्त्र बल से नागदेवों का आव्हान किया । नागदेव मेघों का रू प बनाकर समस्तआकाश में फैल गयें और लगे चक्रवर्ती की सेनापर मूसलधार पानी बरसाने । पानी बरसते- समय ऐसा मालूम होता

था मानों आकाशकेफट जानेसे स्वर्ग गंगा का प्रबल प्रवाह ही वेग से - नीचे गिरा रहा हो । जब चक्रवर्ती की सेना उस प्रचण्ड वर्षासे आकुल व्याकुल होने लगी तब उन्होंने ऊपर छत्ररत्न ँऔर नीचे चर्मरत्न फैलाकर उसकेबीचमें समस्त सेना केसाथ विश्राम किया

लगातर सात दिन तक मूसलाधार वर्षो होती रही जिस से ऐसा मालूम होने लगा था कि भरत की सेना समुद्र में तैर रही है । मौका देखकर भरत ने उपद्रव दूर करनेके लिये गणबध्द देवों को आज्ञा दी । गणबद देवोंने अपनी अप्रतिम हुंकार से समस्त दिशाएं गुंजा दी । उसी समय बहादूर जयकुमार ने दिव्य धनुष लेकर बाणोंसे आकाश को भर दिया और सिंह नाद से सब नागोंकेदिल दहला दिये थे । वे डरकर भाग गये जिस से आकाश निर्मल हो गया । उस में पहले की भांति सूर्य चमकने लगा । भरतने जयकुमार की वीरता से प्रसन्न होकर उसका घ मेघेश्वर ङ नाम रखा और उपद्रव को दूर हुआ समझकर छत्ररत्न का संकोच किया । जब नागदेव भाग गये तब म्लेच्छा राजा बहुत दु:खी हुए क्योंकि इनकेपास चक्रवर्ती की सेना के- ँ
साथ लडनेकेलिये और कोई उपाय नहीं था । अन्तमें हार मानकर वे चक्रवर्ती से मिलने के- लिये और साथमें अनेक मणि, मुक्ता आदि का उपहार लाये । सम्राट भरत म्लेच्छ राजाओं से - मित्र की तरह मिले । भरत का सद्व्यवहार देखकर वे पराजित होने का दु:ख भूल गये और कुछ देर तक अनुनय विनय करनेके बाद अपने स्थानपर चले गये । इस केअनन्तर भरतजी समस्त सेना केसाथ हिमवत् पर्वत की ओर गये । वहां मार्ग में सिन्धु देवीने अभिषेक कर उन्हें एक उत्तम सिंहासन भेंट किया । कुछ दिनों तक गमन करनने केबाद वे हिमवत् पर्वत केउपकण्ठ ँ समीप में पहुचं गये । वहां उन्होंने पुरोहित केसाथ उपवास करकेचक्ररत्न की पूजा की तथा और भी अनेक मन्त्रों की आराधना की । फिर हाथ में वज्रमय धनुष लेकर हिमवत् पर्वत की शिखर को लक्ष्यकर अमोध बाण छोडा । उसकेप्रताप से वहां रहने वाला देव नम्र होकर चक्रवर्ती से मिलने आया और साथ में अनेक वस्त्राभूषणों की भेंट लाया । चक्रवर्ती ने उसकेनम्र व्यवहार से प्रसन्न होकर उसे विदा किया । वहांसे लौटकर वे वृषभाचल पर्वतपर पहुंचे । वह पर्वत श्वेत रंग का था इसलिए ऐसा मालूम होता था मानो चक्रवर्ती का इकट्ठा हुआ यश ही हो । सम्राट भरत ने वहां पहुच कर अपनी कीर्ति प्रशस्त लिखनी चाही पर उन्हें वहां कोई ऐसा शिला - तल खाली नहीं मिला जिसपर किसी का नाम अंकित न हो । अब तक दिग्विजयी भरत का ह्दय अभिमान से फुला न समाता था पर ज्योंही उनकी दृष्टि असंख्य राजाओं की प्रशस्तियों पर पडी त्योंही उनका समस्त अभिमान दूर हो गया । निदान, उन्होंने एक शिलापर दुसरे राजा की प्रशस्ति मिटाकर अपनी प्रशस्ति लिख दी । सच है संसार केसमस्त प्राणी स्वार्थ साधनमें तत्पर हुआ करते है । वृषभाचल से लौटकर वे गंगा द्वार पर आये, वहां गंगादेवीने अभिषेक कर उन्हें अनेक रत्नों केआभूषण भेंट किये । वहांसे भी लौटकर वे विजयार्ध गिरिकेपास आये । वहां गुहा-द्वार का उद्घाटन कर प्राच्य खण्ड की विजय करनेके लिये सेनापति जयकुमार को भेजा और आप वहीं पर छह मास तक सुखसे ठहरे रहे । इसी बीचमें

विद्याधरो के राजा नमि, विनमि अनेक उपहार लेकर चक्रवर्तीसे भेंट करनेके लिये आये । चक्रवर्तीके सद्व्यवहार से प्रसन्न होकर नमि राजाने उनकेसाथ सुभद्रा नाम की बहिन की शादी कर दी ।

अनवद्य सुन्दरी सुभद्रा को पाकर चक्रवर्ती ने अपना समस्त परिश्रम सफल समझा ।इतनेमें - सेनापति जयकुमार प्राच्य खण्डों को जीतकर वापिस आ गया । अब सब सेना और सेनापति के साथ चक्रवर्ती भरत, खण्ड - प्रपात नामक गुहा में घुसे । वहां नाटयमाल नाम के देवने उनका खुब सत्कार किया तथा अनेक आभूषण दिये । गुहा पार करने केबाद क्रम-क्रमसे भरत महाराज कैलाश गिरिपर पहुंचे , वहां उन्होंने कुछ दिनों तक विश्राम किया । कैलाश की गगन चुम्बी धवल शिखरोंने भरतराज केहृदय पर अपना अधिकर जमा लिया था । वहांका प्राकृतिक सौन्दर्य देखते हुए उनका जी उसे छोडना नहीं चाहता था । यही कारण था कि वहांपर कथा नायक भगवान् वृषभदेव समवसरण सहित कई बार पहुंचे और भरत ने आगे चलकर तीर्थकरों के सुन्दर मन्दिर बनवाये । कैलाश से लौटकर सम्राट भरतने राजधानी अयोध्या की ओर प्रस्थान किया और कुछ प्रयाणं पडावं तय करने के बाद अयोध्यापुरी को वापिस आ गये । दिग्विजयी भरत के स्वागत के लिये अयोध्या नगरी खुब सजाई थी । समस्त नगरवासी और आसपासके बत्तीस हजार मुकुटबध्द राजा उनकी अगवानी के लिये गये थे । अपने प्रति प्रजा का असाधारण प्रेम देखकर भरतजी बहुत प्रसन्न हुए । वे सब लोगोंके साथ अयोध्यापुरी में प्रेवश करने के लिये - चले । सब लोगोंकेआगे चक्ररत्न चल रहा था ।

चक्रवर्ती का जो सुदर्शन - चक्र भारतवर्ष की छह खण्ड वसुन्धरा में उनकी इच्छाके- विरुध्द कहीं पर नहीं रुका था वह पुरीमें प्रवेश करते समय बाहा द्वार पर अचानक रुक गया । यक्षोंकेप्रयत्न करने पर भी जब चक्ररत्न तिल भर भी आगे नहीं बढा तब चक्रवर्ती ने विस्मित होकर पुरोहित से उसका कारण पूछा । पुरोहितजी ने निमित्तज्ञान से जानकर उसका कारण बतलाया कि अभी आप को अपने भाइयों को वश में करना बाकी है - जब तक आपके सब भाई आप केआधीन न हो जायेंगे तब तक चक्ररत्न का नगरमें प्रवेश नहीं हो सकता, क्योंकि इस दिव्य शस्त्र का ऐसा नियम है कि , जब तक छह खण्ड के समस्त प्राणी चक्रवर्ती केअनुयायी न बन जावे तब तक वह लौटकर नगर में प्रवेश नही करता । पुरोहित केवचन सुनकर चक्रवर्तीने अनेक उपहारों केसाथ अपने भाइयोंकेपास चतुर दूत भेजे और उन्हें अपनी आधीनता स्वीकार करने - केलिए प्रेरित किया । भरतकेभाइयोंने ज्योंही दूतों केमुखसे उनका सन्देश सुना त्योंही उन्होंने - संसार से विरक्त होकर राज्य -तृष्ण छोडकर दीक्षा लेना अच्छा समझा और निश्चय केअनुसार दीक्षा लेनेकेलिये भगवान् आदिनाथ केपास चले भी गये । इन्होंने लौटकर भरतजी से -सब समाचार कह सुनाये । भाइयों के विरह से उन्हें चिन्ता हुई तो अवश्य, किन्तु राज्य लिप्सा भी कीई चीज है उसके वशीभूत होकर उनने अपने हृदयमें बन्धु-विरह को आधिक स्थान नहीं दिया । फिर उन्होंने अपनी दूसरी मा सुनन्दा केपुत्र बाहुबलीकेपास एक चतुर दूत भेजा । उस समय बाहुबली पोदनपुन के राजा थे । वह

क्रम-क्रमसे अनेक देशोंके लांघता हुआ पोदनपुर पहुंचा और वहां द्वारपाल के द्वारा राजा बाहुबलीके पास आनेकी खबर भेजकर राजसभा में पहुचा । वहां एक ऊंचे सिंहासन पर बैठे हुए बाहुबली को देखकर इनकेमनमें संशय हुआ कि यह शरीर धारी है या अनड है ? मोहनी आकृतिसे युक्त बसंत है ? मूर्तिधारी प्रताप है? अथवा घाम तेजका समूह है ? दूतने उन्हें नमस्कार किया । बाहुबली ने भी बडे भाई भरतके-राजदूत का यथोचित सत्कार किया । कुछ समय बाद जब उन्होंने उससे आने का कारण पूछा तब तह विनीत शब्दों में कहने लगा- नाथ ! राज राजेश्वर भरत जो कि भारतवर्ष की छह खण्ड वसुन्धरा को जीतकर वापिस आये है , उन्होंने राजधानी अयोध्या से मेरे द्वारा आपकेपास सन्देशा भेजा है - प्यारे भाई । यह विशाल राज्य तुम्हारे बिना शोभा नहीं देता इसलिये तुम शीघ्रही आकर मुझसे मिलो । क्योंकी राज्य वही कहलाता है जो समस्त बन्धु बान्धवोंकेभोगका कारण हो । यद्यपि मेरे चरण कमलोंमे समस्त देव विद्याधर और सामान्य मनुष्य भक्ति से मस्तक झुकाते है तथापि ज तक तुम्हारा प्रतापमय मस्तक उनकेपास मज्जाल मराल-मनोहर हंस की भांति आचरण नहीं करेगा तब तक उनकी शोभा नहीं । इसके अनन्तर महाराज ने यह भी कहला भेजा है कि जो केाई हमारे अमोध शासन को नही मानता उनका शासन यह चक्ररन्त करता है बस जब दूत संदेश सुना कर चुप हो रहा तब कुमार बाहुबली मुस्कुराते हुए बोले- ठीक, तुम्हारे राज राजेश्वर बहुत ही बुध्दिमान मालूम होते है । उन्होंने अपने संदेश में कुछ कुछ साम और दाम और विशेष कर भेद-दण्ड का कैसा अनुपम समन्वय कर दिखाया है ? कहते कहते - बाहुबली की गंभीरता उत्तरोत्तर बढती गई । उन्होंने गंभीर स्वरमें कहा - तुम्हारा राजा भरत बहुत मायावी मालूम होता है । उसकेमन में कुछ और है और संदेश कुछ और ही भेज रहा है । यदि दिग्विजयी भरत सचमुचमें सुरविजची है तो फिर दर्भ कुशाकेआसनपर बैठकर उनकी आराधना क्यों करता था ? इसी तरह यदि उसकी सेना अजेय थी तो वह म्लेच्छोंकेसमर में लगातार सात दिन तक क्यों तकलीफ उठाती रही ? पूज्य पिताजीने मुझ में और उसमें समान रुपसे राज पदका प्रयोग किया था । फिर उसकेसाथ राजराजेश्वर का प्रयोग कैसा ? सचमुच- तुम्हारा राजा चक्री है , कुम्हार है उसे चक्र घुमाने का खुब अभ्यास है । इसीलिए वह अनेक पार्थिव घडे बनाता रहता है, चक्रही उसकेजीवन का साधन है। उससे जाकर कह दो यदि तुम अरिचक्रका संहार करोगे तो जीवन - जल आयुसे हाथ धोना पडेगा । भरत के अन्तिम - सन्देश का उत्तर देते समय बाहुबली केओंठ कांपने लगे थे , आंखे लाल हो गई थी , उन्होंने दूत से कहा जाओ तुम्हारा भरत संग्रामस्थल में मेरे सामने ताण्डव नृत्य रचकर अपना भरत -नट नाम सार्थक करे । मैं किसी तरह उसकी सेवा स्वीकार नहीं कर सकता । उक्त उत्तरकेसाथ बाहुबली ने दुत को विदा किया और युध्दकेलिए सेना तैयार की ।

इधर दूतने आकर जब भरतसे ज्योंकेत्यों सब समाचार कह सुनाये तब वे भी युध्द के लिये सेना लेकर पोदनपुर पहुंचे । वह भाई भाईको लहाई किसीको अच्छी नहीं लगी । दोनों बुध्दिमान - मन्त्रियोंने दोनोंको लडने से रोका, पर राज्य - लिप्सा और अभिमान से भरे हुए उनकेहृदय में किसी के

भी वचन स्थान न पा सके । अगत्या दोनों ओरके मन्त्रियोंने सलाह कर भरत और बाहुबली से निवेदन किया कि इस युध्दमें सेनाका व्यर्थही संहार होगा इसलिए आप दोनों महाशय स्वयं युध्द करें, सैनिक लोग चुपचाप तमाशा देंखे । आप भी सबसे पहले - दृष्टि युध्द फिर जलयुध्द और बादमें मल्लयुध्द ही कीजियेगा । इन तीन युध्दों में जो हार जावेगा वही पराजित कहलावेगा । मन्त्रियों की सलाह दोनों भाइयों को पसन्द आ गई इसलिये उन्हेंाने अपनी अपनी सेनाको युध्द करनेसे रोक दिया । निश्चयानुसार सबसे पहिले दृष्टि युध्द करने के लिये दोनों भाई युध्दभूमि में उतरे । दृष्टि युध्द का तरीका यह था कि दोनों विजिगीषु एक दूसरे कि आंखो की ओर देखे, देखते देखते जिसके पलक पहले झप जावें वही पराजित कहलावे । यहां इतना ख्याल रखिये कि भरत का शरीर पांच सौ धनुष ऊंचा था और बाहुबली का पांच सौ पच्चीस । इसलिये दृष्टि युध्दके समय भरत को ऊपर की ओर देखना पडता था और बाहुबलीको नीचेकी ओर । वायु भरने से भरत के पलक पहले झप गये । विजयलक्ष्मी बाहुबली का प्राप्त हुई । इसकेअनन्तर जलयुध्दकेलिये दोनों भाई तालाबमें प्रविष्ट हुए । जलयुध्द का तरीका यह था कि दोनों एक दूसरे पर पानी फेंके जो पहीले रुक जावेगा वही पराजित कहलावे बाहुबली ऊंचे थे इसलिये वे जो जलधारा छोडते थे वह भरत के सारे शरीर पर पडती थी और भरत जो जलधारा छोडतें थे वह बाहुबली को छू भी न सकती थी । निदान इसमें भी बाहुबली ही विजयी हुए । उन्तमें मल्लयुध्द के लिए दोनो वीर युध्द- स्थलमें उतरे । मल्लयुध्द देखने के लिए आए हुए देव और विद्याधरों के विमानों से आकाश भर गया था और पृथ्वी तल पर असंख्य मनुष्यराशि दिख रही थी । देखते देखते बाहुबली ने भरत को उठाकर चक्र की भांति आकाश में घुमा दिया जिस से बाहुबली का जयनाद समस्त आकाश में गूंज उठा । चक्रवर्ती भरत को अपना अपमान सहा नहीं हुआ इसलिए उन्होंने क्रोध में आकर भाई बाहुबली के ऊपर सुदर्शन चक्र चला दिया जो कि दिग्विजय के समय किसी के ऊपर नहीं चलाया गया था । पुण्य के प्रताप से चक्ररत्न, बाहुबली कुमार का कुछ भी न बिगाड सका, वह उनकी तीन प्रदक्षिणांए देकर भरत के पास वापिस लौट आया । जब भरत ने चक्र चलाया था तब सब ओरसे धिक् धिक की आवाज आ रही थी । बडे भाई भरत का यह तुच्छ व्यवहार देखकर कुमार बाहुबली का मन संसार से एक दम उदास हो गया । उन्होंने सोचा कि मनुष्य राज्य आदिकी लिप्सासे क्या अनुचित काम नहीं कर बैठते ? जिस राज्य के लिये भरत और मैने - इतनी बिडम्बना की है अन्त में उसे छोडकर चला जाना पडेंगा इत्यादि विचार कर उन्हेंाने अपने - पुत्र महाबली के लिये राज्य- भार सौपकर जिनदीक्षा लेली । वे एक वर्ष तक खडे खडे ध्यान - लगाये रहे , उनकेपैरों में अनेक बन- लताए और सांप लिपट गये थे फिर भी वे ध्यानसे विचलित नहीं हुए । एक वर्षकेबाद उन्हें दिव्य ज्ञान प्राप्त हो गया जिस के प्रताप से वे तीनों कालोंकी बात और तीनों लोकोंको एक साथ जानने और देखने लगे थे और अन्त में सबसे पहले मोक्ष धामको गये । इधर जब क्रोध का वेग शान्त हुआ तब भरत भी बाहुबली के बिना बहुत दु:खी हुए । आखिर उपाय हि क्या था ? समस्त पुरवासी और सेनाके साथ लौटकर उन्होंने अयोध्या में प्रवेश किया । अब वे

निष्कंटक होकर समस्त पृथ्वी का शासन करने लगे । सम्राट भरत ने राज्य रक्षाकेलिये समस्त राजाओं को राज - धर्म , क्षत्रिय धर्म का उपदेश दिया था । जिसके अनुसार प्रवृत्ति करने से राजा और प्रजा सभी लोग सुखी रहते थे । राजा प्रजा की भलाई करनेमें - संकोच नहीं करते थे और प्रजा, राजा की भलाई में प्राण देनेके लिये भी तैयार रहते थे । इस तरह महाराज भरत स्त्रीरत्न सुभद्रा के साथ नाना प्रकार केभोग भोगते हुए सुख से समय बिताते थे ।

एक दिन उन्होंने विचारा कि मैने जो इतनी अधिक सम्पत्ति इकट्ठी की है , उसका क्या होगा ? बिना दान किये इसकी शोभा नहीं पर दान दिया भी किसे जावे ? मुनिराज तो - संसार से सर्वथा निस्पृह है इसलिये वे तो धन धान्य आदिका दान न ले सकते है न उन्हें देने - की आवश्यकता भी है । वे सिर्फ भोजन की इच्छा रखते है सो गुहस्थ उनकी इच्छा पूर्ण कर देते है । हां गृहस्थ धन-धान्य का दान ले सकते है परअव्रती गृहस्थो को - दान देनेसे लाभ ही क्या होगा ? इसलिए अच्छा हो जो प्रजामें से कुछ दान - पात्रों का चुनाव किया जावे जो योग्य हों उन्हें दान देकर इस विशाल सम्पत्ति को सफल बनाया जावे ।

वे लोग दान लेकर आजीविका की चिन्ताओंसे निर्मूक्त हो धर्म का प्रचार करेंगे और पठन -पाठन की प्रवृत्ति करेंगे । यह सोचकर उन्होंने किसी व्रत केदिन प्रजाको राजमन्दिर में - आनेकेलिए आमंत्रित किया । राजमन्दिर के रास्तें में हरी-हरी दूब लगवा दी, जब प्रजा के- व्रतधारी मनुष्योंने द्वार पर पहुंच कर वहां हरी दूब देखी तब वे अपने व्रतकी रक्षकेलिए वही पर खडे रह गये । पर जो अव्रती थे वे पैरों से दूबको कुचलते हुए भीतर पहुंच गये । भरत ने व्रती मनुष्यों को जो बाहर खडे हुए थे दूसरों प्रासुक रास्ते से बुलाकर खुब सत्कार किया । उस समय व्रती मनुष्यों को भरत महाराज ने गृहस्थोपयोगी समस्त क्रियाकाण्ड , संस्कार ,आवश्यक कार्य आदिका उपदेश देकर यज्ञोपवीत प्रदान किये और जगत्में उन्हें वर्णोत्तम ब्राहाण नाम से प्रसिध्द किया । पाठक भूले न होगे कि पहले भगवान् वृषभदेवने क्षत्रिय वैश्य और शुद्र-वर्ण की स्थापना की थी , और अब भरत ने वर्णोत्तम ब्राहाण वर्णकी स्थापना की है । इस तरह सुष्टि की लौकिक और धार्मिक व्यवस्था केलिए चार वर्णो की स्थापना हुई थी । भरत ने ब्राहाणोंके लिए अनेक वस्त्राभूषण प्रदान किये और उनकी आजीविका केसमुचित प्रबन्ध कर दिये ।

धीरे धीरे ब्राहाणों की संख्या बढती गई । वे आजीविका आदिकी चिन्ता में निर्मूक्त हो स्वतन्त्र चित्तसे शास्त्रों का अध्ययन करते और जैन धर्म का प्रचार करते थे । वर्ण - व्यवस्था का उल्लंघन न हो , इस बात का सम्राट् बहूत ख्याल रखते थे । उस समय क्षत्रिय प्रजा का पालन करते थे, वैश्य व्यापार के द्वारा सबकी आर्थिक चिन्ता दूर करते शूद्र दूसरे की सेवा करते - और ब्राहाण पठन-पाठन का प्रचार करते थे । कोई अपन अपने कर्मोमें व्यतिक्रम नहीं करने पाते थे इसलिए सब लोग सुख शान्ति से जीवन व्यतीत करते थे । एक दिन भरत महाराज ने - रात्रि के पिछले -पहर में कुछ अद्भुत स्वप्न देखे जिससे उनके चित्तमें बहुत कुछ उद्वेग पैदा हुआ । स्वप्नों का निश्चित फल जानने के लिए

उन्होंने किसी औरसे नहीं पूछा, वे सीधे जगत्पूज्य भगवान आदिनाथ के समवसरण में पहुंचे । वहां उन्होंने गन्धकुटीमें बिराजमान जगद्गुरु को - भाक्ति पूर्वक नमस्कार किया और जल चन्दन आदि से उनकी पूजा की : पूजा कर चुकने के- बाद भरत ने पूछा हे त्रिभुवनगुरो ! धर्म-मार्ग के प्रवर्तक आपके रहते हुए भी मौने अपनी मन्दता से एक ब्राहाण वर्णकी सृष्टि की है उससे कुछ हानि तो न होगी ? यह कहकर रात्रिके- देखे हुए स्वप्न भी कह सुनाये और उनका फल जानने की इच्छा प्रकट की । भरत का प्रश्न समाप्त होते ही भगवान ने दिव्य बाणीमें कहा

पूजा द्विजानां श्रृणु वस्त ! साध्वी, कालान्तरे प्रत्युत दोष हेतु : ।
काले कलौजाति मदादिमेते, बैरं करिष्यन्ति यत : सुमार्गे ।।

- अर्हदास

वत्स ! यद्यपि इस समय ब्राह्ग्रणों की पूजा श्रेयस्करी है उससे कोई हानि नहीं है तथापि कालान्तरमें वह रोष का कारण होगी । यही लोग कलिकालमें समीचीन मार्ग के विषय में जाति आदिके अहंकारसे विद्वेष करेंगे । यह सुनकर भरतने कहा -यदि ऐसा है तब मुझे इन्हें विध्वंस ं नष्ट् करनेंमे क्या देर लगेगी ? मै शीध्र ही ब्राहाण वर्ण की सुष्टि मिटा दूगा । तब उन्होंने कहा नही । धर्म सुष्टि का अतिक्रम करना उचित नहीं है , इसके बाद उन्होंने जो स्वप्नों का फल बतलाया था वह यह है - अये वत्स ! पृथ्वीतलमें बिहार करनेके बाद पर्वत की शिखरोंपर बैठे हुए तेईस सिंहों के देखने का फल यह है कि प्रारम्भसे तेइस तीर्थकरों के समय में दुर्णय की उत्पत्ति नहीं होगी, पर जो तुमने दूसरे स्वप्नमें एक सिंह-बालकके पास हाथी खडा देखा है उससे मालूम होता है कि अन्तिम तीर्थकर महावीर तीर्थमें कुलिडी साधु अनेक दुर्णय प्रकट करेंगे । हाथीके भारसे जिसकी पीठ भग्न हो गई है ऐसे घोडेके देखने - से यह प्रकट होता है कि दु:षम पंचम कालके साधु तपकार धारण नहीं कर सकेंगे । सुखे पत्ते खाते हुये बकरों का देखना बतलाता है कि कलिकालमें - मनुष्य सदाचार को छोडकर दुराचारी हो जावेंगे ।

मन्दोन्मत्त हाथी की पीठपर बैठा हुआ बन्दर बतलाता है कि दु:षम काल में - अकुलीन मनुष्य राज्य शासन करेंगे । कौओंके द्वारा उल्लूओंका मारा बतलाता है कि कालान्तर में मनुष्य सदा सुखद जैन धर्म को छोडकर दूसरे मतों का करने लगेंगे । नृत्य करते हुए भुतों के देखने से मालूम होता कि आगे चलकर प्रजा के लोग व्यन्तरोंको ही देव समझकर पूजा करेंगे ।

जिसका मध्यभाग सूखा हुआ है और आस पास पानी भरा हुआ है ऐसे तालाब देखने -का फल यह है कि कालान्तर मै मध्य खण्डमें सद्धर्म का अभाव हो जावेगा और वह आस पास में स्थिर रहेगा । धूलिधूसर रत्नों के देखने से ज्ञात होता है कि दुषम काल मे मुनियों को ऋध्दियां उत्पन्न नहीं होगी । कुन्ते का सत्कार देखना बतलाता है कि आगे चलकर ब्रतरहित ब्राहाण पूजे जावेंगे घुमते हूये जवान बैल के देखने का फुल यह है कि मनुष्य जवानी मेही मुनिव्रत धारण करेंगे । चन्द्रमा के परिवेष

देखने से मालूम होता है कि कालिकाल के मुनियों को अवधिज्ञान प्राप्त नहीं होगा । परस्पर मिलकर जाते हुये बैलो को देखने से प्रकट होता है कि साधु कभी अकेले विहार नहीं कर सकेंगे ।

सूर्य का मेघों में छिप जाना बतलाता है कि पंचमकाल में प्राय: केवलज्ञान उत्पन्न नही होगा । सूखा वृक्ष देखने से पुरुष और स्त्रियां चरित्र हो जावेंगी यह प्रकट होता है । और वृक्षों के जीर्ण पके हुये पत्तों के देखने से बिदित होता है कि पंचम युग में महौषधियां तथा रस वगैरह नष्ट हो जावेंगे ।

इस तरह उन्होंने स्वप्नों का फल बतलाकर भरत आदि समस्त श्रोताओं को विध्न शान्ति के लिये धर्म में दृढ रहने का उपदेश दिया । देवाधिदेव वृषभनाथ की अमृत वाणी से सन्तुष्ट होकर भरत महाराज ने विध्न शान्ति के लिये उनकी पूजा की स्तुति की , और अन्तमें नमस्कार कर अयोध्यापुरी की ओर प्रस्थान किया ।

भरत के मरीचि , अर्ककीर्ति आदि पुत्र उत्पन्न हुए थे । ग्रन्थ विस्तार के भय से उन सबका यहां उपाख्यान नहीं किया जाता है । एक दिन मेघेश्वर जयकुमार जो कि भरत चक्रवर्ती का सेनापति था उसने संसार के विरक्त होकर जिन दीक्षा ले ली और तपकी विशुध्दि से मन:पर्यय ज्ञान प्राप्त करके जिनेन्द्र वृषभदेव का गणधर बन गया । केवलज्ञान से शोभायमान त्रिभुवन जिनेन्द्र धर्म- क्षेत्रो में धर्म का बीज बोकर और उपदेशामृतकी वृष्टि से उसे सींचकर पौष मास के पूर्णमांसी के दिन चिरपरिचित कैलाश पर्वतपर पहुंचे । वहां उन्होंने योगनिरोध किया , समवसरण में बैठना छोड दिया, उपदेश देना बन्द कर दिया । सिर्फ मेरु की तरह अचल होकर आत्म-ध्याममें लीन हो गये । जिस दिन वृषभदेवने योग निरोध किया था उसी दिन भरतने - स्वप्नमे लोक के अन्त तक लम्बायमान मन्दराचल देखा । युवराजने , भवरोग, नष्ट करने के बाद महौषधिको स्वर्ग जानेके लिये उद्यत देखा गृहपतिने नर समुह को मनवांछित फल देकर स्वर्ग जाने के लिये तैयार हुए कल्य वृक्षको देखा । प्रधान मन्त्रीने याचको के लिये अनेक रत्न देकर आगे जाते हुए रत्नद्वीप को देखा, और सुभद्रा देवीने महादेवी, यशस्वती और सुनन्दा के साथ शोक करती हुई इन्द्राणी को देखा । जब भरतने पुरोहित से स्वप्नों का फल पूछा तब उसने - कहा ये सब स्वप्न देवाधिदेव वृषभनाथ के निर्वाण-प्रस्थान को बतला रहे है । इतनेमें ही आज्ञाकारी आनन्द ने आकर भरतसे भगवान् के योग-निरोध का सब समाचार कह सुनाया । चक्रवर्ती भरत उसी समय समस्त परिवारके साथ कैलाश गिरिपर पहुंचे और चौदह दिन तक त्रिलोकीनाथ की पूजा करते रहे । त्रिलोकीनाथ धीरे-धीरे अपने मनको वाहा जगतसे हटाकर अन्तरात्मामें लगाते जाते थे । उस समय में कैलाश के शिखरपर पूर्व दिशा की ओर पल्यंकासनसे - बैठे हुए थे । उनके शरीर में एक रोमांच भी हिलता हुआ नजर नहीं आता था । सब देव विद्याधर मनुष्य वगैरह हाथ जोडे हुए चुपचाप बैठे थे । वह दृश्य न जाने कितना शान्तिमय होगा ? योग - निरोध किये हुए जब तेरह दिन समाप्त हो गये और माघ कृष्णा चतुर्दशी का मंजुल प्रभात आया, प्राची दिशामें लालिमा फैल गई तब उन्होंने शुक्लध्यान रुप खड्गके प्रथम प्रहारसे बहत्तर कर्म-शत्रुओं को धराशायी बना दिया । अब आप तेरहवें गणस्थान से चौदहवें गुणस्थानमें पहुच

गये । वहां पहुचकर वे अयोग केवली कहलाने लगे । उस समय उनके न वचन योग था, न मनोयोग था । उनके इ आन्तरिक परिवर्तन का वाहा लोगोंको क्या पता लगता ? वे तो उन्हें पूर्वकी भांति ही ध्यानारुढ देखते रहे । चौदहवें गुणस्थान में पहुंचे हुए उन्हें बहुत ही थोडा अ इ उ ऋ लृ इन पांच लघु अक्षरों के उच्चारण में जितना समय लगता है उतना समय हुआ था कि उन्होंने शुक्ल ध्यान रुपी तीक्ष्ण तलवार के दूसरे प्रहार से बाकी बचे हुए तेरह कर्म-शत्रुओं को भी धराशायी बना दिया । अब आप सर्वदा के लिये सर्वथा स्वतन्त्र हो गये । उनकी आत्मा तत्क्षण में लोक शिखर पर पहुंच गई और शरीर देखते देखते विलीन हो गया । सिर्फ नख और केश बाकी बचे थे । उसी समय जयध्वनि करते हुए आकाश से समस्त देव आये । उन्होंने मायासे भगवान का दूसरा शरीर निर्माण कर उसे चन्दन ,कपूर ,लवंग , घृत आदि से बने हुए कुण्ड में विराजमान किया , फिर अग्निकुमार देवने अपने मुकुट के- स्पर्शसे उस में अग्निज्वाला प्रज्वलित की । उसी समय कुछ गणधर और सामान्य केवली भी मोक्ष पधारें थे सो देवोंने भगवत्कुण्ड से दक्षिण की ओर गणधर कुण्ड और केवली कुण्ड बनाकर उनमें उनका अग्नि -संस्कार किया था । आज पवित्र आत्माएं संसार बन्धन से मुक्त हो गई । यह सुनकर किस मुमुक्षु प्राणी को अनन्त अनन्त न हुआ होगा ? अग्नि शान्त होने पर समस्त देवोंने तीनों कुण्डों से भस्म निकाल कर अपने ललाट, कण्ठ, भुज शिखर हृदयमें लगा ली । उस समय समस्त देव आनन्द से उन्मत्त हो रहे थे । उन्होंने गा बजाकर मधुर संगीत में मुक्त आत्माओं की स्तुति की , इन्द्रने आनन्दसे आनन्द नाटक किया और सुरगुरु बृहस्पति ने संसार का स्वरुप बतलाया । इस तरह भगवान का निर्वाण महोत्सव मनाकर देव लोग अपनी अपनी जगह पर चले गये । पिताके वियोगसे भरतको दु:खी देखकर वृषभसेन गणधर ने उन्हें अपने उपदेशामृत से शान्त किया जिससे भरतजी शोकरहित हो गणधर महाराज को नमस्कार कर अयोध्यापुरी लौट आये ।

नाभिराज , मरुदेवी , यशस्वती, ब्राह्मी ,सुन्दरी आदिके जीव अपनी अपनी तपस्या के अनुसार स्वर्ग में देव हुए । पिताके निर्वाण के बाद चक्रवर्ती भरत कुछ समय तक राज्य शासन करते तो अवश्य रहे , पर भीतरसे बिलकुल उदास रहते थे । भगवान वृषभदेव की निर्वाणभूमि होनेके कारण कैलाशगिरि उस दिनसे सिध्दक्षेत्र नाम से प्रसिध्द हो गया । भरतने - वहांपर चौबीस तीर्थकरों के सुन्दर मन्दिर बनवा कर उनमें मणिमयी प्रतिमाएं विराजमान करायी थी ।

एक दिन वे दर्पण में मुंह देख रहे थे कि उनकी दृष्टि सफेद बालों पर पडी । दृष्टि पडतें ही उनके हृदय में वैराग्य सागर लहरा पडा । उन्होंने तपको ही सच्चे कल्याण का मार्ग समझकर अर्ककीर्ति के लिये राज्य दे दिया और स्वयं गणीन्द्र वृषभसेन के पास जाकर दीक्षा ले ली । भरत का हृदय इतना आधिक निर्मल था कि उन्हें दीक्षा लेनेके कुछ समय बाद ही केवलज्ञान प्राप्त हो गया । केवली भरतने भी जगह जगह घुमकर धर्मका प्रचार किया और अन्तमें कर्म-शत्रुओं को नष्टकर आत्म स्वातन्त्र्य मोक्ष प्राप्त किया । वृषभसेन, अनन्त विजय, अनन्ततीर्य, अच्युत, वीर, वरवीर, श्रेयांस , जयकुमार

आदि गणधरोंने भी काल क्रम से मोक्ष लाभ किया । इस तरह प्रथम तीर्थकर भगवान वृषभनाथ का पवित्र चरित्र पूर्ण हुआ । इनकेबैलका चिन्ह था ।

भगवान अजितनाथ

स ब्रहानिष्ठ: सममित्र शत्रु र्विद्या विनिर्वान्त कषाय दोष : ।
लब्धात्म लक्ष्मी रजितो जितात्मा जिन: श्रियं मे भगवान विधत्ताम् ।।

वे आत्मस्वरुपमें लीन, शत्रु और मित्रों को समान रुपसे देखने वाले, सम्यकज्ञान से कषाय रुपी शत्रुओं को हटाने वाले , आत्मीय विभूति को प्राप्त हुए और अजित है आत्मा जिनकी ऐसे भगवान् अजित जिनेन्द्र मुझे कैवल्य लक्ष्मीसे युक्त करें ।

(१) पूर्वभव परिचय

इसी जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदीके दक्षिण किनारे पर एक मत्स नामका देश है । उसमें धनधान्य से सम्पन्न एक सुसीमा नगर है । वहां किसी समय विमलवाहन नाम का राजा राज्य करता था । राजा विमलवाहन समस्त गुणोंसे विभूषित था । वह उत्साह , मन्त्र और प्रभाव इन तीन शाक्तियों से हमेशा न्यायपूर्वक प्रजा का पालन करता था । राज्य कार्य करते हुए भी वह कभी आत्म-धर्म - संयम, सामायिक वगैरह को नहीं भूलता था । वह बहुत ही मन्द - कषायी था । एक दिन राजा विमल को कुछ कारण पाकर वैराग उत्पन्न हो गया । विरक्त होकर वह सोचने लगा - संसार के भीतर कोई भी पदार्थ स्थिर नहीं है । यह मेरी आत्मा भी एक दिन इस शरीरको छोडकर चली जावेगी, क्योंकि आत्मा और शरीर का सम्बन्ध तभीतक रहता है जबतक कि आयु शेष रहती है । यह आयु भी धीरे धीरे घटती जा रही है इसलिए आयु पूर्ण होने के पहले ही आत्म-कल्याण की ओर प्रवृत्ति करनी चाहिये । इस प्रकार विचार कर वन में गया और वहां किन्ही दिगम्बर यति के पास दीक्षित हो गया । उसके साथ और भी बहुत से राजा दीक्षित हुए थे । गुरुके चरणों के समीप रहकर उसने खूब विद्याध्ययन किया जिससे उसे ग्यारह अंग का ज्ञान हो गया था । उसी समय उसने दर्शन विशुध्दि आदि सोलह भावनाओं का चिन्तवन भी किया था जिससे उनके तीर्थकर नामक महापुण्य प्रकृति का बन्ध हो गया था । विमलवाहन आयु के अन्त में संन्यास पूर्वक मरकर विजय विमान में अहमिन्द्र हुआ । वहां उसकी आयु तेतीस सागर की थी । उसका जैसा शरीर शुक्ल था वैसा ह्दय भी शुक्ल था । उसे वहां संकल्प मात्रसे ही सब पदार्थ प्राप्त हो जाते थे । पहले की वासना से वहां भी उसका चित्त विषयों से उदासीन रहता था । वह यहां विषयानन्द को छोड कर आत्मानन्दमें ही लीन रहता था । तेतीस हजार वर्ष बीत जानेपर उसे एक बार आहार की इच्छा होती थी । अहमिन्द्र विमलवाहन के विजय विमानमें पहुंचते ही अवधिज्ञान हो गया था । जिससे वह त्रस नाडी के भीतर के परोक्ष पदार्थो को प्रत्यक्ष की तरह स्पष्ट जान लेता था । यही अहमिन्द्र आगे चलकर भगवान अजितनाथ होंगे ।

(२) वर्तमान परिचय

इसी भारत वसुन्धरा पर अत्यन्त शोभायमान एक साकेतपुरी (अयोध्यापुरी) है। उसमें किसी समय इक्ष्वाकु वंशीय काश्यप गोत्री राजा जितशत्रु राज्या करते थे। उनकी महारानी का नाम विजयसेना था। ऊपर जिस अहमिन्द्र का कथन कर आये हैं उसकी आयु जब वहां पर छः माह बाकी रह गई तब यहां रोज जितशत्रु के घरपर प्रतिदिन तीन-तीन बार साढ़े तीन करोड रत्नों की वर्षा होने लगी। वे रत्न इंद्र की आज्ञा पाकर कुबेर बरसाता था। यह अतिशय देखकर जितशत्रु बहुती ही आनन्दित होते थे। इसके बाद जेठ महीने की अमावस के दि पिछलेभाग में जब कि रोहिणी नक्षत्र का उदय था, ब्रम्ह मुहूर्त के कुछ समय पहले महारानी विजयसेनाने ऐरावत आदि सोलह स्वप्न देखे और उनके बाद अपने मुंह में एक मत्त हस्तीकोप्रवेश करते हुए देखा। सवेरा होते ही महारानी स्वप्नों का फल जितशत्रुसे पूछा सो उन्होंनेदेशविदेश - रुप लोचनसे देखकर कहा कि हे देवी ! तुम्हारे कोई तीर्थकार पुत्र होगा। उसीके पुण्य बलके कारण छह माह पहले से ये प्रतिदिन रत्न वरस रहे हैं और आज अपने सोलह स्वप्न देखें हैं। स्वप्नों का फल सुनकर विजयसेना आनन्द से फूली न समाती थी। जिस समय इसने-स्वप्नमें मुंह में प्रवेश करते हुए गन्ध हस्तीको देखा था उसी समय अहमिन्द्र विमलवाहन का जीव विजय विमान से चयकर उसके गर्भ में अवतीर्ण हुआ। उस दिन देवोंने आकर साकेतपुरी में खूब उत्सव किया था। धीरे-धीरे गर्भ पुष्ट होत गया, महाराज जितशत्रु के घर वह रत्नोंकी धारा गर्भकेदिनों में भी पहले तरह वरसती रहती थी। भावी पुत्र के अनुपम अतिशय का ख्याल कर महाराज को बहुती आनन्द होता था। जब गर्भका समय व्यतीत हो गया तब माघ शुक्ल दशमी के दिन महारानी विजयसेना ने पुत्र रत्नका प्रवस किया। वह पुत्र जन्मसे ही मति, श्रुति, और अवधि, इन तीन ज्ञानोंसे शोभायमान था उसकी उत्पत्ती के समय अनेक शुभ शकुन हुऐ थे। उसी समय देवोंने सुमेरु पर्वत पर ले जाकर उसका जन्माभिषेक किया और अजित नाम रखा। भगवान अजितनाथ धीरे-धीरे बढ़ने लगे। वे अपनी बाल सुलभ चेष्टाओंसे माता-पिता तथा बन्धु वर्ग आदिका मन प्रमुदित करते थे। आपस के खेल-कूदमें भी जब इनके भाई इनसे पराजित होते जाते थे तब वे इनका अजित नाम सार्थक समझने लगते थे। भगवान आदिनाथ को मुक्त हुए पचास लाख कारोंड सागर बीत जानेपर इनका जन्म हुआ था। उक्त अन्तरालमें लोगों के हृदय में धर्म के प्रति जो कुछ शिथिलता - सी हो गयी थी इन्होंने-उसे दूर कर फिरसे धर्म का प्रद्योत किया था। इनके शरीर रंग तपे हुए सुवर्णकी नाई था। ये बहुती ही वीर और क्रीडा-चतुर पुरुष थे। अनेक तरह क्रीड़ा करते हुए जब इनके अठराह लाख पूर्व बीत गये तब इन्होंने युवावस्था में पदार्पण किया। उस समय उनके शरीर का शोभा बड़ी ही विचित्र हो गई थी। महाराज जितशत्रु ने अनेक सुन्दरी कन्याओं के साथ विवाह कर दिया और किसी शूभमुहूर्त में उन्हें राज्य देकर आप धर्म सेवन करते हुए सद्गति को प्राप्त हुए। भगवान् अजितनाथ ने राज्य पाकर प्रजा इस तरह शासन किया कि उनके गुणोंसे-मुग्ध होकर वह महाराज

जितशत्रु का स्मरण भी भूल गईं इन्होंने समयोपयगी अनेक सुधार करते हुए त्रेपन लाख पूर्व तक राज्य -लक्ष्मी का भोग किया अर्थात् राज्य कियां एक दिन भगवान् अजितनाथ महल की छतपर बैठे हुए थे की उन्होंने अचानक चमकती हुई बिजली को नष्ट होते देखां उसे देखकर उनका ह्रदय विषायों से विरक्त हो गयां वे सोचने लगे कि संसार केहर एक पदार्थ इसी बिजलीकी तरह क्षणभंगूर हैं मेरा यह सुन्दर शरीर और यह मनुष्य पर्याय भी एक दिन इसी तरह नष्ट हो जावेगीं जिस लिए मेरा जन्म हुआ था उसकेलिए तो मैंने अभी तक कुछ भी नहीं कियां खेद है की मैंने सामान्य अज्ञ मनुष्यों की तरह अपनी आयु का बहुभाग व्यर्थ ही खो दियां अब आजसे मैं सर्वथा विरक्त होकर दिगम्बर मुद्रों को धारण कर बन में रहूंगां क्योंकी इन रंग-बिरंगे महलों में रहने से चित्त को शान्ति नही मिल सकती ं इधर इनकेचित्तमें ऐसा विचार हो रहा था उधर लौकान्तिक देवों केआसन कांपने लगे थें आसन कांपने से उन्हें निश्चय हो गया था की भगवान् अजितनाथ का चित्त वैराग्यकी ओर बढ़ रहा हैं निश्चयानुसार वे शीघ्र ही इनके पास आये और तरह तरहके सुभाषितों से इनकी वैराग्या-धाराको अत्याधिक प्रवर्ध्दित कर अपने - अपने स्थान पर चले गयें उसी समय तप:कल्याण उत्सव मनाने केलिये वहां समस्त देव आ उपस्थित हुएं सबसे पहले भगवान् ने अभिषेक पूर्वक अजितसेन नामके पुत्र के लिये राज्य का भार सौंपा और फिर अनाकुल हो वन में जाने केलिये तैयार हो गयें देवोंने उनकाभी तीर्थजल से अभिषेक किया और तरह तरहकेमनोहर आभूषण पहिनाये अवश्य पर उनकी उस रागवर्ध्दक क्रिया में भगवान को कुछ भी आनन्द नहीं मिलां वे सुप्रभा नामक पालकी पर सवार हो गयें पालकीको मनुष्य, विद्याधर और देवलोग क्रम क्रमसे अयोध्या केसहेतुक बन में ले गयें वहां वे सप्तपर्ण वृक्ष केनीचे एक सुन्दर शिलापर पालकीसे उतरें जिस शिलापर वे उतरे थे उसपर देवांगनाओंने रत्नों केचूर्णसे कई तरहकेचौक पूरे थें सप्तपर्ण वृक्ष केनीचे विराजमान व्दितीय जिनेन्द्र अजितनाथ ने पहले सबकी ओर विरक्त दृष्टिसे देखकर दीक्षीत होनेकेलिये सम्मति लीं फिर पूर्वकी ओर मुंह कर नम: सिध्देभ्य: कहते हुए वस्त्राभूषण उतार कर फेंक दिये और पंच मुष्ठियों से कश उखाड डालें इन्द्रने केशोंको उठाकर रत्नों केपिटारमें रख लिया और उत्सव समाप्त होने केबाद क्षीरसागरमें क्षेपण कर आयां दिक्षा लेते समय उन्होंने षष्ठोपवास धारण किया थां जिस दिन भगवान् अजितनाथ ने दीक्षा धारण की थी उस दिन माघ मासके शुक्ल पक्षकी नवमी थी और रोहिणी नक्षत्र का उदय थां दिक्षा सायंकाल केसमय ली थीं उनके साथमें एक हजार राजाओं ने दिक्षा धारण की थीं उस समय भगवान् अजित की विशुध्दता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि उन्हें दिक्षा लेते समय ही मन:पर्यय ज्ञान प्राप्त हो गया थां जब प्रथमयोग समाप्त हुआ तब वे आहार के लिये अयोध्यापुरी में आयें वहां ब्रम्हा नामक श्रेष्ठीने- उन्हें उत्तम आहार दिया जिससे उसकेघर पर देवोंन पंचाश्चर्य प्रकट कियें अजितनाथ जी आहार लेकर चुपाचाप वन को चले गये और वहां आत्म-ध्यानमें लीन हो गयें योग पूरा होने पर वे आहारकेलिये नगरों में जाते और आहार लेकर पुन: वनमें लौट आते थें योग पूरा होने पर वर्ष तक उन्होंने कठिन तपस्याएं की, जिन केफलस्वरुप उन्हें पौष मास

केशुक्ल पक्ष की एकादशी केदिन सायंकाल केसमय रोहिणी नक्षत्र केउदय में केवलज्ञान प्राप्त हो गया। अब भगवान् अजित अपने दिव्य ज्ञान (केवलज्ञानसे) से तीनों केसब चराचर पदार्थो कों एक साथ जानने लगे। देवोंन आकर ज्ञान-कल्याणक उत्सव मनाया। इन्द्र की आज्ञा पाकर धनपति कुबेरने विशाल सम वसरण की रचना की। उस में गन्धकुटी केमध्य भाग में अजित भगवान् विराजमान हुए। जब वह सभा देव मनुष्य तिर्यच आदिसे खचाखच भर गई तब उन्होंनै अपनी दिव्य ध्वनिके व्दारा सबको धर्मोपदेश दिया, जिससे प्रभावित होकर लोग आत्मधर्म में पुन:दृढ़ हो गये। अजित केवली ने देश-विदेश में घुमकर धर्मका खूब प्रचार किया था। उनकेसिंहसेन आदि नब्बे गणधर थे, तीन हजार सात सौं पचास पूर्वधारी, इक्कीस हजार छह सौ शिक्षक, नौ हजार चार सौ अवधिज्ञानी, बीस हजार केवलज्ञानी, बीस हजार चारसौ विक्रिया ऋध्दिवाले, बारह हजार चार सौ पचास मन:पर्यय ज्ञानी और बारह हजार चार सौ अनुत्तर वादी थे। इस तरह सब मिलाकर एक लाख तपस्वी थे। प्रकुब्जा आदि तीन लाख बीस हजार आर्यिकाएं तीन लाख श्रावक, पांच लाख श्राविकाएं और असंख्य देव-देवियां थीं और असंख्यात तिर्यंच थे। समवसरण भूमि में वेहमेश आठ प्रातिहार्योसे युक्त रहते थे। अन्त में उनकी आयु एक महिने की शेष रह गयी तब वे श्रीसम्मेद शिखर पर पहुंचे और वहां एक माहका योग धारणकर मौन पूर्वक खडे हो गये। उस समय उन्होंने प्रति समय शुक्लध्यान केप्रतापसे कर्मोकी असंख्यात गुणी निर्जरा की, दण्ड, प्रतर आदि समुद्घातसे अन्य कर्मो की स्थिति बराबर की और फिर अन्तिम व्युपरत, क्रिया -निवर्ति शुक्लध्यान से समस्त अघतिया कर्मोका क्षयकर चैत्र शुक्ल पंचमी केदिन रोहिणी नक्षत्र केउदय में प्रात:काल के समय मुक्ति -धाम को प्राप्त किया। वे हमेशा केलिये सुखी स्वतंत्र, हो गये। भगवान अजितनाथ की कुल आयु ७२ बहत्तर लाख पूर्व की थी और शरीरकी ऊंचाई चार सौ पचास धनुषकी थी। इनकेसमयमें सगर नाम का द्वितीय चक्रवर्ती हुआ था। उसने भी आदि चक्रधर भरत की तरह भरत क्षेत्र केछह खण्डों का विजय किया था। अप्रासंगिक होने से - यहां उसका विशेष चरित्र नही लिखा गया है। भगवान अजितनाथ केहाथी का चिन्ह था।

भगवान शंभवनाथ

त्वं शंभव:संभवतर्षरोगै:संतप्यमानस्य जनस्य लोकें

आसी रिहा कास्मिक एव वैद्यो वैद्यो यथा नाथ ! रुजां प्रशान्त्यै।

स्वामी समन्दभद्र।

हे नाथ ! जिस तरह रोगोंकी शान्ति केलिये कोई वैद्य होता है उसी तरह आप शंभनाथ भी उत्पन्न हुए तृष्णा रोगसे दुखी होने वाले मुनष्य की रोग शांति केलिये अकस्मात प्राप्त हुए वैद्य थे।

(१) पूर्वभव परिचय

जम्बू द्विप केपूर्व विदेह क्षेत्र में सीता नदी केउत्तर तटपर एक कच्छ नामका देश है उस में एक क्षेमपूर नामका नगर है। क्षेमपुरा का नाम जैसा था उसमें वैसे ही गुण थे अर्थात् उसमें- हमेशा क्षेम-मंगलों का ही निवास रहता था। वहांकेराजा नाम विमलवाहन था। विमलवाहन ने अपने बाहुबल से

समस्त विरोधी राजाओं को वश में कर लिया थाँ शरद ऋतुकेइन्दुकी तरह उसकी निर्मल किर्ती सब ओर फैल्ली हुई थीँ वह जो भी कार्य करता था वह मन्त्रियों की सलाह से ही करता था इसलिये उसके समस्त कार्य सुदृढ़ हुआ करते थेँ